रूसो के दार्शनिक चिन्तन की आचार मीमांसा

रूसो मनुष्य को ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति मानते थे और यह मानते थे कि ईश्वर ने उसे जन्म से अच्छा बनाया है। यही कारण है कि इन्होंने मनुष्य को किसी भी प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक नियमों से मुक्त कर, उसे अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करने की सलाह दी है, और यह मानकर दी है कि उसकी स्वयं की प्रकृति सरल है, शुद्ध है, एक-दूसरे से प्रेम करने की है, एक-दूसरे से सहयोग करने की है और सुखपूर्वक जीने की है। इनका अपना अनुभव यह था कि सभ्यता के नाम पर मनुष्य झूठ, फरेबी, मक्कारी और शोषण करना सीखता है और यह बात सच भी है, उस समय यूरोप में प्रबुद्ध वर्ग सामान्य मनुष्यों का खूब शोषण कर रहा था। वैसे भी यदि हम रूसो की पहली बात को नजर अन्दाज कर इनकी दूसरी बात पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि रूसो मनुष्य से सरल एवं शुद्ध आचरण की अपेक्षा करते थे, उससे प्रेम एवं सहयोग के साथ रहने की अपेक्षा करते थे और उससे एक-दूसरे से झूठ न बोलने, फरेब न करने और एक-दूसरे का शोषण न करने की अपेक्षा करते थे। इसे रूसो ने एक शब्द—सत्संकल्प (Good Will) में अभिव्यक्त किया है। सच बात यह है कि रूसो ने अपने समय के दूषित समाज और उसकी दूषित सभ्यता एवं संस्कृति का विरोध किया था और दूषित राज्य का विरोध किया था अन्यथा तो इन्होंने स्वयं आदर्श राज्य की पूरी रूपरेखा प्रस्तुत की है और मनुष्य को मनुष्य बनाने की पूरी शिक्षा योजना प्रस्तुत की है।

रूसो का शैक्षिक चिन्तन
(Educational Thoughts of Rousseau)

रूसो का शैक्षिक चिन्तन इनके निम्नलिखित आधारभूत विचारों पर आधारित है—

(1) प्रकृति शुद्ध, सरल, सुन्दर एवं सुखदायक है।

(2) मनुष्य की प्रकृति भी स्वतन्त्र, पर शुद्ध, सरल, सुन्दर एवं सुखदायक है। वह स्वतन्त्र रहना चाहता है फिर भी उसमें एक-दूसरे से प्रेम करने, एक-दूसरे का सहयोग करने एवं एक-दूसरे को सुख पहुँचाने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है।

(3) समाज अनेक दोषों से युक्त है और प्रकृति पूर्णरूपेण शुद्ध है।

(4) सभ्यता के कारण ही मनुष्य का व्यवहार अप्राकृतिक (कृत्रिम) हो गया है और वह प्रेम के स्थान पर द्वेष करने लगा है और दूसरों के सुख की चिन्ता करने के स्थान पर उनका शोषण करने लगा है।

(5) वास्तविक ज्ञान हमें प्रकृति से मिलता है, समाज से नहीं।

(6) मनुष्य की इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वार हैं।

(7) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है।

आइए अब इनके शैक्षिक चिन्तन को क्रमबद्ध रूप से देखें-समझें।

शिक्षा का सम्प्रत्यय

रूसो के समय शिक्षा चर्च (धर्म) के हाथ में थी। उस समय राज्य पर भी चर्च का प्रभाव था और चर्च और राज्य का महत्त्व इतना अधिक था कि व्यक्ति के महत्त्व को भुला दिया गया था। शिक्षा में भी यही बात सत्य थी, बच्चे की व्यष्टिगत विशेषताओं का कोई महत्त्व नहीं था, सभी

बच्चों को समान योग्यताओं का एक छोटा प्रौढ़ माना जाता था और उन्हें शीघ्र से शीघ्र चर्च एवं राज्य की मान्यताओं से परिचित कराकर राज्यभक्त बनाने का प्रयत्न किया जाता था। उस समय वर्ग भेद अपनी चरम सीमा पर था, निर्धनों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी, और जन शिक्षा की अवहेलना हो रही थी। रूसो ने इस सबके विरोध में आवाज उठाई।

रूसो ने कहा कि शिक्षा एक प्राकृतिक क्रिया है जिसके द्वारा बच्चे की जन्मजात शक्तियों का प्राकृतिक विकास होता है, अतः सब बच्चों को उनके प्राकृतिक विकास का अवसर मिलना चाहिए। इन्होंने अपने समय की शिक्षा को कृत्रिम बताया क्योंकि उसमें बच्चे की प्राकृतिक शक्तियों का विकास नहीं होता था, अपितु उसे बाहर से सामाजिक मान्यताओं से परिचित कराया जाता था। इन्होंने ज्ञान देने के स्थान पर ज्ञान का विकास करने पर बल दिया। इन्होंने कहा कि बच्चों को सत्य से परिचित कराने की आवश्यकता नहीं, उन्हें सत्य खोजने योग्य बनाने की आवश्यकता है। इन्होंने सूचनाओं के स्थान पर अनुभव पर बल दिया। यह अनुभव इन्द्रियों द्वारा होता है इसलिए इन्होंने पहले इन्द्रियों को प्रशिक्षित करने और फिर उनके द्वारा अनुभव करने एवं उस अनुभव से सत्य का पता लगाने को ही शिक्षा कहा। इसे इन्होंने निषेधात्मक शिक्षा (Negative Education) की संज्ञा दी। पहले प्रकार की शिक्षा को ये निश्चयात्मक शिक्षा (Positive Education) कहते थे।

इस प्रकार रूसो के अनुसार शिक्षा के दो रूप हैं— एक निश्चयात्मक शिक्षा (Positive Education) और दूसरा निषेधात्मक शिक्षा (Negative Education)। रूसो के अपने शब्दों में—निश्चयात्मक शिक्षा वह शिक्षा है जो मनुष्य के विकास से पहले उसके मस्तिष्क का विकास करती है और बच्चे को प्रौढ़ों के कर्त्तव्यों से परिचित कराती है। (I call positive education one that tends to form the mind prematurely and instinct the child in the duties that belong to man)। और इनके अपने ही शब्दों में—निषेधात्मक शिक्षा वह शिक्षा है जो ज्ञान के साधन अवयवों को पहले मजबूत करती है। अवयवों द्वारा शिक्षा देना ही सच्ची शिक्षा है। यह इन्द्रियों के उचित अभ्यास से तर्क का मार्ग प्रशस्त करती है। निषेधात्मक शिक्षा का अर्थ निष्क्रियता नहीं है, यह इससे बहुत दूर है। यह सद्गुण प्रदान नहीं करती अपितु बुराई से बचाती है, यह सत्य प्रदान नहीं करती अपितु भूल से बचाती है। यह बालक को उस मार्ग की ओर प्रवृत्त करती है जो उस समय सत्य की ओर अग्रसर करेगा जब वह सत्य को समझने की आयु प्राप्त करेगा और उस समय अच्छाई की ओर अग्रसर करेगा जब वह इस अच्छाई को समझने एवं उससे प्रेम करने की शक्ति प्राप्त करेगा (I call negative education that which tends to perfect the organs that are the instruments of knowledge, giving this knowledge directly is true education, and that endeavours to prepare the way for reason by proper exercise of the senses. A negative education does not mean the time of idleness, far from it. It does not give virtue, it protects from vice, it does not inculcate truth, it protects from error. It disposes the child to take the faith that will lend him to turth when he has reached the age to understand it and to goodness when he has acquired the faculty of recognising and loving it.)।

रूसो द्वारा प्रतिपादित निषेधात्मक शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर इन्द्रियों के प्रशिक्षण एवं स्वानुभव द्वारा सीखने पर अधिक बल दिया गया है। इसमें बच्चों पर बन्धन नहीं होते, वे अपनी प्रकृति के अनुसार प्राकृतिक वातावरण में अपना विकास करने के लिए स्वतन्त्र रहते हैं। इसमें बच्चों को शाब्दिक निर्देशन नहीं दिए जाते, अपितु बच्चे स्वयं करके सीखते हैं।

रूसो निषेधात्मक शिक्षा को ही वास्तविक शिक्षा मानते थे। इनके अनुसार प्रारम्भ में बच्चों की शिक्षा पूर्णरूप से निषेधात्मक ही होनी चाहिए। किसी भी स्तर की शिक्षा में वे पुस्तकीय ज्ञान एवं शिक्षक के निर्देशनों का विरोध करते थे। इनके अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो बच्चे के प्राकृतिक विकास में सहायक होती है और जिसमें व्यक्ति अथवा समाज द्वारा न्यूनतम निर्देशन होता है। इनके अपने शब्दों में—'शिक्षा अन्दर से होने वाला विकास है, बाहर से एक साथ होने वाली वृद्धि नहीं, यह प्राकृतिक मूल प्रवृत्तियों के क्रियाशील होने से विकसित होती है, बाह्य शक्तियों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप नहीं'(Education is a development from within, not an accretion from without, it comes through the working of natural instincts and not through response to external forces,)।

शिक्षा के उद्देश्य

रूसो समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व देते थे इसलिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के वैयष्टिक विकास पर बल दिया है। इन्होंने कहा कि हमें किसी बच्चे को सैनिक, पादरी अथवा मजिस्ट्रेट बनाने से पहले उसे आदमी बनाना चाहिए। यह आदमी प्राकृतिक आदमी होगा और भावप्रधान आदमी होगा। यह सबसे प्रेम करेगा और सबका सहयोग करेगा। यह झूठ, दम्भ स्वार्थपरता के दोषों से मुक्त होगा। इसके लिए इन्होंने मनुष्य की नैसर्गिक शक्तियों के प्राकृतिक विकास की बात कही है। इनके अनुसार शिक्षा का यही उद्देश्य होना चाहिए। मनुष्य के विकास का एक क्रम है, वह कई अवस्थाओं —शिशु, बाल, किशोर एवं युवा को पार करता हुआ एक प्रौढ़ बनता है और भिन्न-भिन्न आयु स्तर पर उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति भिन्न होती है। रूसो ने इस भिन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न आयु स्तर की शिक्षा के उद्देश्यों में भी कुछ भिन्नता की है। उसे हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं—

1. **शारीरिक विकास**—मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी है। उसका मन भी इस शरीर का अंग है। शरीर है तो मनुष्य का अस्तित्व है अथवा नहीं। इसलिए उसका शारीरिक विकास करना पहली आवश्यकता है। रूसो का विश्वास था कि शारीरिक दुर्बलता पाप की जननी है इसलिए ये प्रारम्भ से ही बच्चों को बलशाली बनाने पर बल देते थे। (All wickness comes from weakness. The child should be made strong so that he will do nothing which will be bad.)। इनके अनुसार शिशु शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य शारीरिक विकास ही होना चाहिए। अन्य स्तरों पर भी इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना आवश्यक है।

2. **इन्द्रिय प्रशिक्षण**—इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वार हैं। रूसो ने पुस्तकीय ज्ञान के विरोध में इन्द्रिय प्रशिक्षण एवं स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल दिया है। इनके अनुसार बालकालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य इन्द्रिय प्रशिक्षण ही होना चाहिए। रूसो कहते थे कि बच्चा छोटा प्रौढ़ नही होता, इसलिए उसे प्रौढ़ों के कर्त्तव्यों का ज्ञान इस स्तर पर नहीं कराना चाहिए। बच्चा, बच्चा ही होता है और

बाल्यावस्था में उसकी प्रकृति अपने शारीरिक एवं इन्द्रिय विकास की होती है, अतः इस स्तर पर बच्चों की इन्द्रियों को मजबूत करने पर सबसे अधिक बल देना चाहिए।

3. बौद्धिक विकास—रूसो कहते थे कि जब बच्चे की इन्द्रियाँ प्रशिक्षित हो जाएँगी तो वह स्वानुभव द्वारा स्वयं सत्य की खोज करेगा और इस प्रकार उसका बौद्धिक विकास होगा। इसे भी वे शिक्षा का एक उद्देश्य मानते थे। इनके विचार से किशोरावस्था पर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। ये कहते थे कि किशोरावस्था पर बच्चों को ऐसा पर्यावरण देना चाहिए कि वे परिश्रम करें, अध्यवसाय करें, अन्वेषण में रुचि लें और स्वानुभाव द्वारा ज्ञान का विकास करें।

4. भावात्मक विकास—रूसो के अनुसार मानव विकास के प्रथम तीन स्तरों पर क्रमशः शरीर, ज्ञानेन्द्रियों एवं बुद्धि का विकास करना चाहिए और जब इनका विकास हो चुके तो युवावस्था पर उनके हृदय का विकास करना चाहिए, उनमें मानव मात्र के प्रति प्रेम, सहानुभूति और सहयोग का भाव उत्पन्न करना चाहिए।

5. जीने की कला—रूसो जीवन के कटु सत्यों को पहचानते थे। ये जानते थे कि मनुष्य में जीने की इच्छा है और उसका जीना अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। अतः ये उसे जीने की कला में भी दक्ष कर देना चाहते थे। इन्होंने एमिल की शिक्षा के विषय में स्वयं कहा है कि मैं उसे जीने के तरीके सिखाना चाहता हूँ (To live is the trade I wish to teach him)। इनके अनुसार पुरुष एवं स्त्रियों की प्राकृतिक रचना समान होते हुए भी उनका कार्य क्षेत्र भिन्न होता है इसलिए उन्हें अपने-अपने कार्यों का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। पुरुषों को ये किसी व्यवसाय की शिक्षा देने के पक्ष में थे और स्त्रियों को गृहकार्य की शिक्षा देना चाहते थे।

6. अधिकारों की रक्षा—रूसो के समय चर्च और राज्य द्वारा सामान्य जनता का बहुत शोषण हो रहा था इसलिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक विकास, इन्द्रिय प्रशिक्षण, बौद्धिक विकास, भावात्मक विकास और जीवन की कला के प्रशिक्षण के साथ-साथ उसमें अन्याय के विरोध करने की शक्ति के विकास पर बल दिया। इनका विश्वास था कि सुखपूर्वक जीने के लिए अधिकारों की रक्षा भी आवश्यक है।

7. स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण—रूसो के समय यूरोप में मनुष्य समाज, धर्म और राज्य, इन तीनों के शिकंजे में दबा हुआ था। रूसो ने स्पष्ट किया कि मनुष्य जन्म से स्वतंत्र पैदा होता है, उसकी प्रकृति स्वतन्त्र रहने की है इसलिए उसे अपने समाज और अपने राज्य का निर्माण स्वयं करने और उनका संचालन स्वयं करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए और यह तभी सम्भव है जब मनुष्यों को सोचने और विचार अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। ऐसे पर्यावरण में मनुष्य में जिस व्यक्तित्व का निर्माण होता है उसे ही दूसरे शब्दों में स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण कहते हैं।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

रूसो ने मानव विकास की मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं को प्रस्तुत किया और उसी के अनुसार प्रत्येक स्तर के लिए भिन्न-भिन्न उद्देश्य एवं भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या निश्चित की। ये बच्चों के ऊपर अपनी तरफ से कुछ भी लादने के पक्ष में नहीं थे, ये तो उनकी अपनी प्रकृति के अनुकूल पर्यावरण तैयार करने की बात कहते थे और इसलिए इन्होंने भिन्न-भिन्न आयु स्तर के बच्चों की मनोवैज्ञानिक

स्थिति के अनुसार उनके लिए पाठ्यचर्या का विकास किया है। इन्होंने मनुष्य के शैक्षिक जीवन को चार कालों में बाँटा हैं और उनके लिए अलग-अलग पाठ्यचर्या निश्चित की है।

शैशव काल (जन्म से 5 वर्ष तक) —इस आयु में बच्चे पशु सदृश्य होते हैं, उनके पुट्ठे मज़बूत होते हैं, वे क्रियाशील होते हैं, वे प्रति क्षण कुछ न कुछ करना चाहते हैं, वे खेलने, कूदने, दौड़ने और गायन में रुचि दिखलाते हैं, अतः इस स्तर पर बच्चों को इसी के लिए अवसर देने चाहिए। रूसो का विश्वास था कि कृत्रिम जीवन ने हमारा स्वास्थ्य चौपट कर दिया है इसलिए ये कहते थे कि बच्चों को प्रकृति की गोद में स्वतन्त्र विचरण करने दो, जिससे इनका शरीर शीत और गर्मी को सहन करने योग्य बन जाए। इस आयु स्तर के बच्चों के लिए ये किसी भी प्रकार के निर्देशन अथवा पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करते थे।

बाल्यावस्था (5 से 12 वर्ष तक) —इस अवस्था पर भी बच्चों का शारीरिक विकास होगा और उन्हें खेलने, कूदने, दौड़ने तथा तैरने के पूर्ण अवसर प्रदान किए जाएँगे। इसके साथ-साथ उनकी इन्द्रियों का भी विकास होगा। इन्द्रिय प्रशिक्षण के लिए उन्हें भिन्न-भिन्न वस्तुओं को देखने, स्पर्श करने, सूँघने, सुनने एवं चखने के अवसर दिए जाएँगे और उनकी अनुभूतियों को भाषाबद्ध किया जाएगा। इसी आधार पर बच्चों को इस समय प्रकृति अध्ययन, भाषा, गणित और भूगोल की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस समय वे स्वयं के अनुभवों के आधार पर सीखेंगे। आगे के स्तर पर इन्हीं विषयों का विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ होगा।

किशोरावस्था (12 से 15 वर्ष तक) —इस स्तर पर बच्चों की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों में विकास होता है और वे अपनी क्रियाओं के फल को समझने एवं मूल्यांकन करने लगते हैं। इस काल में जिज्ञासा की प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है, बच्चे नई-नई चीजों की खोज में रुचि दिखलाते हैं अतः इस समय उन्हें प्राकृतिक विज्ञानों की शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके साथ-साथ भाषा, गणित, भूगोल, हस्तकार्य, संगीत तथा सामाजिक जीवन की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। उद्योग की शिक्षा भी इस स्तर पर प्रारम्भ कर देनी चाहिए। इसके अन्तर्गत रूसो ने लकड़ी के काम आदि को स्थान दिया है।

युवावस्था (15 से 25 वर्ष तक) —इस अवस्था में बालक, बालक न रहकर मनुष्य बनता है अतः अब उसके संवेगों को स्थिर करना चाहिए। रूसो इस समय निश्चयात्मक शिक्षा (Positive Education) को प्रारम्भ कर देने के पक्ष में थे। यद्यपि ये तत्कालीन समाज के विरोध में सामाजिकता का भी विरोध कर बैठे थे लेकिन अपने काल्पनिक पात्र एमील की शिक्षा का विधान करते समय इन्होंने सामाजिक नियम, नीति और धर्म के महत्त्व को स्वीकार किया था और युवावस्था पर इसकी शिक्षा का विधान भी किया था। रूसो चाहते थे कि इस अवस्था पर बच्चे मानव जीवन की विभिन्न झांकियों को स्वयं देखें। वे धनी एवं निर्धनों के रहन-सहन एवं व्यवहार को देखें , शुद्ध आचरण करने वालों को देखें, दीन-दुखियों को देखें, अस्पताल में मरीजों को देखें और कारावास में कैदियों को देखें। इससे उनके हृदय में मानव जीवन के प्रति भावनाएँ जागृत होंगी। इस समय उन्हें नीति एवं धर्म से भी परिचित कराया जाए, पर यह धर्म संकीर्ण नहीं होगा, इसमें कृत्रिमता नहीं होगी, यह भी प्राकृतिक धर्म (Natural Religion) होगा। प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा सद्गुणों की शिक्षा का विधान इस स्तर पर होना ही चाहिए। रूसो के अनुसार इस स्तर पर धार्मिक कथाएँ भी सुनाई जा सकती हैं पर वे भी काल्पनिक न होकर यथार्थ होनी चाहिएँ। उनसे प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया,

क्षमा, सहनशक्ति आदि सद्‌गुणों का विकास होना चाहिए। इस स्तर पर रूसो ने इतिहास की शिक्षा का भी समर्थन किया है क्योंकि उससे आचरण की शिक्षा मिलती है। पूर्व स्तरों की शारीरिक एवं बौद्धिक शिक्षा का क्रम इस स्तर पर भी चालू रहेगा और उसकी व्यावसायिक शिक्षा अब पूर्ण होगी।

स्त्रियों के लिए पाठ्यचर्या—रूसो को अपने जीवन में किसी सभ्रान्त परिवार की पढ़ी-लिखी स्त्री का सुख प्राप्त नहीं हुआ था। समाज द्वारा ठुकराए इस व्यक्ति को किसी ऐसी नारी का प्यार भी नहीं मिला था। इन्हें स्त्री जाति से जो कुछ भी सुख मिला था वह अपनी दासी के रूप में। इसलिए स्त्रियों के सम्बन्ध में इनके विचार बड़े अटपटे हैं। एक ओर तो ये पुरुष एवं स्त्री को समान प्रकृति का बताते हैं और दूसरी ओर कहते हैं कि एक शिक्षित एवं सभ्य स्त्री अपने पति, बच्चों, पूरे परिवार एवं नौकरों, सभी के लिए प्लेग का रोग है (A women of culina, is the plague of her husband, her children, her family, her servants – every body)। इसीलिए इन्होंने एमील की पत्नी सोफिया को पैरिस की शिक्षित, सभ्य एवं शृंगारप्रिय स्त्री न बनाकर उसे गृह विज्ञान (भोजन बनाना, सीना-पिरोना, बच्चों का पालन करना आदि) की शिक्षा दी है। शिशु एवं बाल अवस्था पर तो ये बच्चों तथा बच्चियों के लिए समान क्रियाओं का विधान करते थे पर उच्च शिक्षा से स्त्रियों को वंचित कर उन्हें केवल गृहस्थ जीवन की शिक्षा देना उचित समझते थे। रूसो के अनुसार सद्व्यवहार की शिक्षा तो स्त्रियों को भी देनी होगी, क्योंकि सद्‌गुणों का विकास तो पुरुष एवं स्त्री दोनों में होना है। बिना सद्‌गुणों के विकास के तो मनुष्य के जीवन में सुख का प्रवेश होगा ही नहीं।

शिक्षण विधियाँ

रूसो मनुष्य को मनोशारीरिक प्राणी मानते थे और यह मानते थे कि उसका किसी भी प्रकार का विकास उसके शरीर (कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों) और मनन (मन की शक्तियों पर निर्भर करता है। इसी आधार पर इन्होंने शिक्षण विधियों का विकास किया। प्रकृति की ओर लौटो (Back to Nature) इनका सबसे पहला नारा था। इन्होंने इस बात पर बहुत बल दिया कि बच्चों की शिक्षा प्रकृति की गोद में होनी चाहिए और उनकी अपनी प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। रूसो ने विकास की चार अवस्थाओं— शिशु, बाल, किशोर तथा युवा का वर्णन कर भिन्न-भिन्न अवस्था के बच्चों की प्रकृति का वर्णन किया और उनके लिए भिन्न-भिन्न क्रियाओं का चुनाव किया। पुस्तकीय शिक्षा को ये किसी भी स्तर के लिए स्वीकार नहीं करते थे।

रूसो के अनुसार बच्चों को स्वयं करके स्वयं के अनुभवों द्वारा सीखना चाहिए। स्वयं करके सीखना (Learning by Self Experience) इनका दूसरा नारा था। इन्होंने लिखा है कि अपने विद्यार्थी को मौखिक पाठ मत पढ़ाओ, उसे अनुभव द्वारा सीखने दो।

रूसो ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान का द्वारा मानते थे। इनके अनुसार पहले ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना चाहिए; ज्ञान का विकास तो उनके द्वारा फिर स्वयं हो जाएगा। शिक्षण करते समय बच्चों की ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग पर ये बहुत बल देते थे। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा (Education through Senses) इनका तीसरा नारा था।